रोटी हँसे

(काव्य-संग्रह)

रमेश शर्मा 'महबूब'

मूल्य १० रुपये

प्रकाशक : नगर पालिक निगम, इन्दौर
मुद्रक : गीतांजलि, २१४ एम. जी. रोड, इन्दौर
मुखपृष्ठ : रामप्रसाद शर्मा — मूल्य · १० रुपये
प्रथम सस्करण - १६७६

ROTI HANSE (Collecting of Poems) : Ramesh Mahboob

आदरणीय स्व० श्री लक्ष्मणसिंह चौहान
एवं
आदरणीय स्व० श्री महेन्द्र त्रिवेदी
जो
अपने नगर के लिए जिये
उन्हें समर्पित

प्रकाशकीय—

आदमी केवल रोटी के सहारे अथवा रोटी के लिये ही जीवन-यापन नहीं कर सकता—इसी प्रकार स्थानीय शासन संस्था का कार्य केवल सार्वजनिक स्वास्थ्य, स्वच्छता तथा अनिवार्य आवश्यक नागरिक सुविधाएँ सुलभ कराने तक ही सीमित नहीं है। वैसे साहित्य, संगीत एवं कला मानव मन-मस्तिष्क को स्वस्थ-स्वच्छ बनाने में सक्रिय-सार्थक सहयोग प्रदान कर सकते हैं। सफल प्रबन्ध-प्रजातंत्र के लिये नागरिकों का सक्षम एवं शिक्षित होना ही पर्याप्त नहीं, अपितु सार्थक-सक्षम-यशस्वी प्रजातंत्र के लिए नागरिकों का सुशिक्षित, सुसंस्कृत एवं सहिष्णु होना नितान्त अनिवार्य है। एतदर्थ दिल-दिमाग की दौलत को द्विगुणित कराने में साहित्य, संगीत एवं ललित कलाएं सक्रिय योगदान दे सकते हैं।

महादेवी अहिल्या के पावन, मध्यप्रदेश के प्रथम—प्रमुख नगर इन्दौर में वीणावादिनी के वरद पुत्र, सरस्वती के सफल साधक-आराधकों की कमी नहीं। नगर एवं नगर निगम में भी यत्र-तत्र सर्वत्र प्रतिभाएँ बिखरी-निखरी पड़ी हैं, आवश्यकता इन्हें संवारने-निखारने की है। नगर निगम ने विनम्र प्रयास कर एक प्रगतिशील परम्परा का शुभारम्भ, नगर निगम में कार्यरत कवि **श्री रमेश शर्मा 'महबूब'** की कविताओं के संग्रह **रोटी हँसे** के प्रकाशन के साथ किया है। प्रयास एवं योजना हमारी यह है कि प्रति वर्ष दो पुस्तकें नगर निगम प्रकाशित करे, इसमें एक पुस्तक निगम परिवार द्वारा विरचित हो तथा दूसरी पुस्तक नगर के किसी लब्ध-प्रतिष्ठित साहित्यकार द्वारा।

निगम प्रशासन जानता-मानता एवं स्वीकारता है कि आज जबकि इस नगर को प्राथमिक नागरिक सुविधाएँ पर्याप्त रूप में नहीं उपलब्ध करा पा रहे हैं, वित्तीय स्थिति अत्यधिक विकट एवं प्रतिकूल है, तो भी इस मान्यता के साथ कि राज्याश्रय की समाप्ति के साथ साहित्य, संगीत एवं कलाओं के विकास तथा उनके प्रति अभिरुचि जागृत करना स्थानीय शासन की नैतिक जिम्मेदारी है, बजट में घाटे के बावजूद नगर निगम खेलकूद, समाज-कल्याण की विविध प्रवृत्तियों, महिलाओं-बच्चों के विकास कार्यों आदि में यथा-शक्ति मदद दे रहा है तो फिर कलम के कलाकार ही क्यों वंचित रहें?

बहरहाल, इस दुस्साहस से भी नगर एवं नगर निगम की उदीयमान प्रतिभाओं को कुछ प्रश्रय-प्रोत्साहन-प्रेरणा मिल सके और वीणावादिनी की आराधना—अर्चना में नगर निगम अपनी पुष्पांजलि अर्पित कर सके, तो हम इसे नगर निगम का सौभाग्य मानकर अपना जीवन अस्तित्व सार्थक समझेंगे।

वि. वि. श्रीवास्तव
प्रशासक
नगर पालिक निगम, इन्दौर

नवम्बर ७९
इन्दौर

रमेश 'महबूब' की कविताएँ

'जनता का साहित्य और जनता के लिए साहित्य' सिद्धांत रूप में भले एक हो, आधुनिक हिन्दी साहित्य में, व्यावहारिक रूप से दोनों के बीच गहरी और चौड़ी खाई है। गंभीर साहित्य के अध्येता जिस साहित्य को जन-जन के दुःख-दर्द, आशा-आकांक्षाओं, संघर्षों-चुनौतियों का स्पंदित अक्स मानते हैं, वह जन-साधारण के बीच जाता नहीं। कारण कई है, पर सच्चाई यह है कि एक पूरी रचनात्मक जनवादी पीढ़ी का रचना संसार उन्ही की आँखो के सामने नही है, जिनके प्रति वह प्रतिबद्ध है। दूसरी ओर कवि सम्मेलनो, व्यावसायिक, रंगीन पत्रिकाओं आदि से जन-जन के बीच पहुँचती रचनाएँ है, जो मनुष्य के संघर्ष को, उसके सुख-दुःख को, रोजमर्रा के जीवन को, उसके पेचों को, खूबसूरत रगों, स्वरो, शब्दजालो मे पेश कर, सही बातों से उसका ध्यान हटाती है। वे वर्गभेद को, शोषण को, राजनैतिक पतन को, पूंजीबद्ध तन्त्र को, यहाँ तक कि निश्छल उदात्त मानव प्रेम को भी लोकप्रिय तथाकथित सामाजिक बम्बइया फिल्मों की तरह मनोरंजक बना कर पेश कर देते है। रचना को उपभोक्ता संस्कृति के विभिन्न घटकों मे से एक घटक बना देते है। यह साहित्य-जनता का साहित्य कहलाने का दंभ भरता है । जन-समूह का साथ यह (भले ही कितना ही क्षणिक क्यों न हो) सच्चे साहित्य को वह चुनौती भरा प्रश्न देता है, जिसका उत्तर पाए बिना गम्भीर, अव्यावसायिक, सृजनशील रचनाकारो को राह नही मिल सकती।

पिछले कुछ बरसों में इन प्रश्नों के सार्थक उत्तर देने के प्रयत्न शुरू हुए हैं और समकालीन रचनाओं के पाठकों, श्रोताओं, संग्राहको और समझने वालों की संख्या बढी है। यह अच्छा लक्षण है। रमेश महबूब की कविताओं में मुझे इस खाई को पाटने वाले पुल की संभावना दिखाई देती है। उनकी कविताओं में समाज की छटपटाती चेतना से साक्षात्कार होता है। वे खुद को विशिष्ट या बुद्धिजीवियों की श्रेणी के साथ नहीं पाते। वे कहते हैं "रह कर जन समूह में हमने भी हर पीड़ा सही।" इसलिए वे लिख पाते है—

मुझ जैसी गुमसुम अनगिनत इकाइयां,
देख रही वर्गों की गहरी खाइयाँ।

यह यथार्थ बोध समकालीन रचना की पहली शर्त है और महबूब की रचनाओं मे बार-बार इस बोध से उपजी चेतना का प्रतिफलन दिखाई देता है। उन्हे यह सच्चाई भी याद रहती है कि—

चने-चबैनो का रिश्ता कब जुड़ा पपीतों से,
खाते रहे जुआर छाछ से नही चाहिए दही।

यथार्थ बोध के साथ महबूब की कविताओं मे वह सहज उत्कण्ठा और विस्मयबोध भी हमें मिल जाता है, जिसके बिना रचना में काव्यमयता आ पाना कठिन है। यह शिशु गुण दूसरो में कायम रहे, यह जरूरी है, क्योंकि तभी सभी कुछ को 'भाग्य की देन' मानने वाले हमारे समाज में प्रश्नाकुलता उपज सकती है, तेज हो सकती है, गहरी बेचैनी और सकर्मक क्रियाशीलता मे बदल सकती है। इसलिए वे निवेदन करते हैं --- 'तुम्हे अभी टूटना नही है, जुड़े रहना है। आँखें मत फेरो। असहाय मत समझो, आकाश मत निहारो, कृपया अपने भीतर के शिशु को मत मारो।'

इस संग्रह मे निजी रागात्मक सम्बन्धो की भी कविताएं हैं। रूप की, यौवन की, दैहिक सन्दर्भो की, मन के सूखे की, बिछोह की। हर जगह गीतात्मक तरल सयोजन से महबूब ने उन भावनाओं को बांधा है। लेकिन इनमें केवल भावना विलास नही। उनकी उत्कटता हमें हवाई नहीं लगती। वह उत्कटता, मन का, तन का वह आवेग, ससार मे खटते मनुष्य का सच्चा आवेग मालूम पड़ता है। इसीलिए कलात्मक मानो पर भले ही उनमें श्रेष्ठता की अद्भुत ऊंचाइयां न हों, वे हमें छूती हैं, सच्चे आदमी की बेलाग बात की तरह। विशेषकर छोटी कविताओं में महबूब अपनी ऊँचाइयों को छूते हैं। बहुत ही सादगी से, वे ऐसी तीखी बात कह जाते हैं, जिसकी कि पाठक या श्रोता को अपेक्षा न हो। इस अनपेक्षित साक्षात्कार से हमारी चेतना सजग होती है और उसकी संवेदना का विस्तार होता है। यह उस भीतरी आत्मसंघर्ष को भी उपजाती है, जो अंततः मानवीय संवेदनाओं के माध्यम से मनुष्य की भीतरी और बाहरी दोनो सच्चाइयों को अधिक स्पष्ट रूप से समझने मे सहायक होती है। इन कविताओं के कई कविताओं में मुझे वह क्षमता दिखाई दी है, जो जनता के सच्चे साहित्य की रचना के लिये जरूरी है। इनमें जन-जन को न केवल आनंद देने, बल्कि उन्हें जागरूक करने, संघर्ष की ओर बढ़ाने, उनकी रुचियों और संस्कार का परिष्कार करने वाले तत्व भी यहाँ-वहाँ मौजूद हैं। इसलिए मैंने पहले कहा था कि 'महबूब' की कविता मे जन-साहित्य और जन के बीच की खाई को पाटने की संभावनाएं है।

उम्मीद है कि 'महबूब' का काव्य-संसार भविष्य में और अधिक व्यापक, बहुआयामी, कलात्मक और समतापारक जीवन-मूल्यों, समाज-मूल्यो का बेहतर वाहक होगा।

—सोमदत्त

कविता-क्रम

गांधी जयन्ती पर....

गांधी जयन्ती के पुनीत पर्व पर,
अखाड़े का उद्घाटन करते हुए,
प्रमुख अतिथि पहलवान ने फरमाया--
हमारी दुआ है,
इस अखाड़े का हर पट्ठा,
गांधी बने !
ताकि उसकी जयन्ती मने।
क्योंकि,
लाठी और लंगोट धारण करते थे बापू,
लाठी और लंगोट धारण करते हैं पहलवान।
पर पहलवानों को रखना है ध्यान—
लाठी के सहारे चलते थे बापू,
तुम्हारे इशारे पर लाठियां चलें,
ताकि
प्रार्थना सभा में,
कोई नये गांधी को गोली से मारे नहीं।
शक्तिशाली अहिंसा,
हिंसा के आगे हारे नहीं॥

भीष्म पितामह से अपील

शरों की सेज पर सोकर सत्याग्रह मत करो भीष्म पितामह।
द्वितीय महाभारत का नायक
मैं अर्जुन, आपसे अपील कर रहा हूँ।
आत्महत्या कर लो। आत्महत्या कर लो॥
सूरज,
अब कभी उत्तरायण को नही आयेगा!
क्योंकि आकाश,
कई इकाइयों में वंट गया है।
आकाश कई झण्डों से ढंक गया है।
सूरज को पारपत्र मिलेगा नही,
उत्तरायण आने का!
इसीलिये,
आपसे अपील कर रहा हूँ मैं—
आत्महत्या कर लो। आत्महत्या कर लो।
मुझे मालूम है, आपके कंठ में जाग रही है प्यास,
पर मैं अर्जुन,
अब अपने बाण से गंगा नहीं निकालूंगा।
क्योंकि गंगातट पर बसे हुए
बड़े महानगरों की गटरों ने,
गंगाजल,
गंदा कर डाला।
गंदा जल पीने से अच्छा है,
अनव्याही प्यास लिये प्यासे ही मर जाना।
इसीलिये आपसे अपील कर रहा हूँ मैं—
आत्महत्या कर लो। आत्महत्या कर लो॥

खुरदरी हथेली फैलाए है देश

कटी हुई रेखाएं लिये बेशुमार
खुरदरी हथेली फैलाए है देश
वर्तमान लिये खड़ा ज्ञापन पर मांग
कुर्सी की राजनीति खोले पंचांग
पढ़ने को बैठी है
अपठनीय भविष्य
रचे हुए ज्योतिषी जैसे हर स्वांग
मुक्तहस्त असन्तोष बांटती बयार
असन्तुष्ट दीखता है सारा परिवेश
कटी ....

बिगड़ी है ग्रहदशा ठीक नहीं योग
क्रय शक्ति घटने के चल रहे प्रयोग
मंहगाई तेजी से
कर रही विकास
आजादी भोग रहे मुट्ठी भर लोग
लिये नयी चिन्ताएं आते त्योहार
दे रहा दिखाई हर चेहरे पर क्लेश।
कटी.................................

रखते भी क्या हैं यों आज हम बिसात
क्यों न स्वीकारे अब बहुमत यह बात
मक्खन और चूने में
कर न सके फर्क
मत देकर मतदाता खा बैठे मात
मांग रहे बैसाखी लंगड़े अधिकार
निकल रहे नये-नये नित अध्यादेश।
कटी.................................

हम सबने झोंकी खुद आँखों में धूल
आंधी के संग उड़कर कर बैठे भूल
आगामी पीढ़ी के
सहना हैं व्यंग्य
खेत में गुलाबों के वो चुके बबूल
करते नहीं बनता है इससे इनकार
अनिर्णीत अनगिनती प्रश्न बहुत शेष।
कटी.... ....,......... ... ...
आत्मघात कर बैठा आदर--सत्कार
जमकर फल-फूल रहा है भ्रष्टाचार
जिस्मानी स्तर पर
आ ठहरी प्रीत
किये हुए है रिश्वत सोलह सिंगार
सत्य और स्वाभिमान का जहाँ निषेध
चाटुकारिता करती उस जगह प्रवेश।
कटी..................................



सो जाना चाहिये

तर्क की भीड़ में
न्याय करने वाले का
विवेक खो गया है
आज ।

भीड़ भरे चौराहे पर
कत्ल करने वाले को
कातिल सिद्ध करना
मुश्किल हो गया है
आज ।

हमें भी कानून की तरह
अन्धे हो जाना चाहिये,
या फिर न्याय को कृत्रिम शंकाओं से मुक्त कराने,
आत्महत्या करके
हत्यारों को मूक सबक देते हुए
कानून की किताबें सिरहाने रखकर स्वेच्छा से
सो जाना चाहिये ।

आजकल

आजकल
शहर, सुबह साफ-सफाई में लगा दीखता है
दुपहर कटती है शहर की काम-काज में
संध्या सजने-संवरने में
पेट भरने में
और रात
नंगा हो जाता है शहर
कैबरे करने में ।
तेज रोशनी
शहर के कपड़े उतार कर
शहर को होटलों में नंगा कर देती है ।
और हम शहर के जाये
नगी रात के साथ
अपने शहर को नंगा नाचते देखते हैं
व्हिस्की के कड़वे घूंट के साथ
शहर और रात की आबरू पर
डालते हैं हाथ ।
शहर सुबह साफ-सफाई में लगा दीखता है ।



वृक्ष और शहर से लगाव नहीं है

वृक्षों पर फैल गई है अमर वेल
शहर में फैल गये वेशरम लोग
हम टकटकी बाँध कर
देख रहे है वृक्ष और शहर को-
इस तरह, जैसे इन दोनों से
हमारा लगाव नही है। हमारा लगाव नहीं है॥
वृक्ष बोझिल है अमरवेल से
कोहरामों के नीचे बिछा है शहर
स्वाभिमान लापता है
श्रम की जेब कट गई है
सच्चाई पागल करार दे दी गई है
धर्म आधुनिक हो रहे हैं
लोगों की भीड़ हवा के साथ उड़ने लगी है
वक्ता बेलगाम हैं
छोटों द्वारा वह सब हो रहा है बड़ों के आगे
जो नहीं होना चाहिये
जिधर देखो, उधर नजर आते हैं
फौंईये।
शहर के बाहर
वृक्षों पर फैल गई है अमरवेल
शहर में फैल गये हैं बेशरम लोग
और हमारा, यानी बुद्धिजीवियों का
कहीं कोई प्रभाव नही है
वृक्ष और शहर से लगाव नही है।

मैं तुम्हारी मूर्ति तराशूंगा

तुम,
अपने ढंग की,
अपने रंग की,
एक चट्टान मुझे भेज दो।
एकाकी समय कटता नही है।
अब,
मैं तुम्हारी मूर्ति तराशूंगा॥

मुँह मत लगाओ

पाप के फल की तरह हूं मैं,
मुझे मुंह मत लगाओ।
मुंह लगा जिसके उसी ने दुःख उठाया
स्वाद ने मेरे उसे जो भर नचाया
एक कड़वा स्वाद मत खुद में जगाओ।
पाप के फल को..............................

चेतावनी

युद्ध और योनि के बीच
सभ्यता
हो न जाए
लापता।

शब्दबद्ध

सारा इतिहास
शब्दबद्ध
पतन और विकास
शब्दबद्ध।

कुछ नहीं है

कुछ नहीं है
वसीयत में लिखाने जैसा
कुछ नहीं है।
अनुभव हैं,
जो लिखाये नही जाते
गैर के अनुभव
काम नही आते।

अपनों के बीच

छोटा हाथ
बड़ों के आगे
मत फैला अभागे
बराबरी वाले से हाथ मिला
सन्तोष कर
अपनों के बीच जी
अपनों के बीच मर।

भैरवी बेला में

लिखे-अधलिखे कागज
स्याही से तर कलम
लेकर
निकला हूं मैं
जैसे निकलता है
भैरवी-वेला में सूरज।

इसे मत रोक

भूख बढ़ रही है
दिल के रास्ते से दिमाग पर चढ़ रही है
इसे मत रोक
इस आग में खुद को मत झोंक।

प्रतीक्षा

गांधीजी मारे गये
गांधीवाद मर रहा है
तू क्या कर रहा है ?
उत्तर मिला—
"प्रतीक्षा !"

बुढ़िया का किस्सा

रोगग्रस्त राजनीति ।
पदलोलुप नेता
देश और जनता के हिस्से में हैं,
समाजवाद किस्से में है।
एक बुढ़िया बोली–
जनता सुखी हो लो !

बताओ

उम्र में छोटे होने का दावा जताकर
मेरे पांव छूते हुए क्या चाहा था तुमने
मैं नहीं जानता।
बस, उस दिन मैंने तुम्हें आशीषों से भर दिया था
और तुमने मुझे रीता कर दिया था।
उस दिन के बाद
बताओ, दर्शन क्यों नहीं दिये।
हमने कौन-से पाप किये।

मैं भी हूँ सगर वंशज

गरमियों में हरिद्वार के घाटों को छूता
बहता है गंगाजल
ऊपर से कुनकुना नीचे से हिम-सा शीतल।
ठीक इसके विपरीतधर्मा तुम
ऊपर से शीतल, भीतर से अनल
अरी ओ हिम-अनलमयी सुरसरी
मैं भी वंशज सगर का
मुझको भी तारो
घाट पर अदेखा-अछूता मत मारो।

सारी रात नर्तकी नाची

ये न प्रकाशित हो पाएगी खबर किसी अखबार में
सारी रात नर्तकी नाची, अंधों के दरबार में,
जगर-मगर रोशनी हो रही, अति सुन्दर आयोजन था
ईरानी कालीन बिछे थे, अंधों का अधिवेशन था
अंधों के सम्राट, स्वर्ण सिंहासन पर आसीन थे।
पूर्व जन्म के धृतराष्ट्र, स्मृतियों में तल्लीन थे।
भूख कला को बेच रही थी, रुपये के बाजार में।
सारी रात नर्तकी ... ...

हाट में गये थे हम...

हाट में गये थे हम, बात क्या बतायें।
सुख खरीदना था, दु:ख खरीद लाये ।।
चाहते चूनर, सात रंग वाली
पहन जिसे दुल्हन पूजती दीवाली
हाट पहुँच कर रिक्त हाथ आना,-
ये न भला लगता कुछ न साथ लाना
शाम हो रही थी, शोर मच रहा था
बिक चुकी चुनरिया, कफन बच रहा था।
आंख आ रही थी, देख नहीं पाये
चूनरी समझकर कफन खरीद लाये।
हाट में गये थे हम बात क्या बताएं .... ।।

कृपया अपने भीतर के शिशु को मत मारो !!!

जब भी दिखो, खिले हुए ताजा फूल की तरह दिखो।
शरारती खुशबू की तरह महको
अपनों में, परायों में
यानी कि नीड़ में, भीड़ में, कहकहे फेंको।
प्रत्येक वस्तु को, व्यक्ति को, आनंदित आंख से निहारो।
प्रौढ़ता के साथ गम्भीरता मत ओढ़ो
कृपया अपने भीतर के शिशु को मत मारो।

आईने में अपना चेहरा देखकर डरो मत
चिन्ता के समुद्र में कूद कर मरो मत
चेहरे की झुर्रियां मत गिनो।
अपने भीतर बोलने वाले की भी सुनो।
सुनो, उस शिशु की बात, जो तुम्हारे भीतर है
बड़ा शरारती है, तोतले उसके स्वर हैं
दोस्त, तुम उसकी मनमानी में साथ दो
उसके हाथों में, अपना कांपता हाथ दो
अपने आपको उसके साथ भूल जाओ।
उसका अनुसरण करो, उसकी तरह हंसो
खेलो, कूदो, नाचो और गाओ।
यदि तुम अपने भीतर के शिशु के साथ ये सब करोगे
मेरा मत है, अपनी जिन्दगी में रंग भरोगे।
बिलकुल ऐसे, जैसे बच्चे भरते हैं सादा चित्रों में
तुम भी रंगीन दिखा करो मित्रों में।
हार-जीत चलती है खेल में
तुम अपनी हिम्मत को हारो मत।
कृपया अपने भीतर के शिशु को मारो मत।।

आते-जाते, मिलते – बिछुड़ते को छेड़ो
नदी के किनारे रेत में, सीपी और शंख हेरो।
घरौंदे बनाओ और तोड़ो

जितना दौड़ सको, दौड़ो।
उद्यानों के लान में लेट लगाओ
भेलपूरी या लालीपाप खाओ
बड़प्पन का बोझ, यदि हर समय तुम पर लदा रहा
निश्चित ही तुम्हें तोड़ देगा।
कटी पतंग की तरह गिरने को छोड़ देगा।
कृपया अपने आपके लिये ऐसी स्थिति मत आने दो।
अपने आपको, अपनी और गैर की नजरों में,
असहाय मत पाने दो।
अपने भीतर के शिशु की किलकारी मत कीलो
उसके चुलबुलेपन पर प्रतिबंध मत लगाओ,
सिरदर्द का बहाना मत करो,
लोगों के कहने-सुनने से मत डरो,
अपने भीतर के शिशु को, अपने माथे पर बिठाओ।
सच मानो तुम्हारा स्थायी सरदर्द दूर हो जाएगा
तुम कराहना छोड़ दोगे, तुम्हारा मन गायेगा।
वो गीत, जो तुमने अपने बचपन में गाये हैं
देखो वो तुम्हें पुनः याद आये है।
उन्हें याद करो, गुनगुनाओ, अपने बचपन में लौट आओ,
ऐसे, जैसे राम लौटे थे अयोध्या
और हुआ था उनका स्वागत, तुम्हारा भी होगा।
पर तुम उम्र और अनुभव के नशे में,
अपने बालपन को नकारो मत
गम्भीरता को गम्भीरता से स्वीकारो मत।
तुम अपने आपको कच्चा फल मानो
अपने पकने का दिन आज नहीं कल मानो।
आज तुम्हे कोई नही तोड़ेगा क्योंकि तुम कच्चे हो
पक्के या तो स्वयं टूट जाते हैं, या तोड़ लिये जाते हैं।
तुम्हें अभी टूटना नही है, जुड़े रहना है।
आंखे मत फेरो
असहाय मत समझो, आकाश मत निहारो।
कृपया अपने भीतर के शिशु को मत मारो।।

सिक्का नहीं है आबरू

सिक्का नहीं है आबरू,
और न सिक्कों पर मिलती है।
तुम या तो बटोर सकते हो सिक्के,
या सिक्कों पर खरीद सकते हो जरूरत की चीजें।
आबरू ली नहीं जाती,
पैदा की जाती है
और इसका पैदा करना
सन्तान पैदा करने-सा नहीं है
समय की भट्टी में गलती है नीयत
आबरू नहीं गलती है।
सिक्का नहीं है आबरू...... ....
आबरू सीता की तरह राम के साथ वन जाती है,
द्रौपदी की तरह चीर खिंचवाती है,
गांधी की तरह गोलियाँ खाती है,
क्रास पर ईसा की तरह चढ़ती है,
शहीदों के कान्धे चढ़,
कर्बला में ढलती है,
आबरू
अवसर देख,
झंडों की तरह नहीं हिलती है
सिक्का नहीं है आबरू ·· ·....

तुम तो आकाश हो गये

तुम तो आकाश हो गये
हम ही उपहास हो गये ।।

लिये हुए कंटकी उसूल,
हम तो हैं मरुथली बबूल ।
तुमने तो ब्याज तक लिया,
अपना तो डूब गया मूल ।
सुख को नित सींच-सींच तुम,
सुखद अमलतास हो गये ।। तुम तो·········

प्रियदर्शी बन कर तुम आज,
पहने हो खुशियों का ताज ।
अशुभ क्षणों मे जन्मे हम,
शुभ सपने तक हैं नाराज ।
जुड़े हुए तुमसे सन्दर्भ,
सचमुच सन्त्रास हो गये ।। तुम तो···········

तुम रीझे कचन मृग पर,
हम रीझे भीगे दृग पर ।
सुमनों की सेज चढे तुम,
छोड़ हमें कंटक डग पर ।
तुमने जिन शब्द को छुआ,
सारे अनुप्रास हो गये । तुम तो······

जीते हुए उम्मीदवार का बयान

ये सच है, मैं पद और प्रभुता पा गया हूँ,
पर कठोर सत्य यह है,
मैं ठगा गया हूँ। मैं ठगा गया हूँ।।

अब निःस्वार्थ सेवा की भावना
मुझ पर व्यंग्य करने लगी है।
मतदाताओं द्वारा दी गई कुर्सी,
मतदाताओं से ज्यादा मेरी सगी है।।
यों तो मैं काफी पढ़ा-लिखा हूँ,
फिर भी उन लोगों के घोषणा-पत्र पर
मैंने अपना अंगूठा लगा दिया है,
जो सब्जबागी हैं।
और मुझे लग रहा है-
मेरा अंगूठा गल रहा है
और वे सब घोषणाओं को अंगूठा बताने में लगे हैं।
लगता है,
मिठाई की तरह मैं अपने जमीर को खा गया हूँ।
मैं ठगा गया हूँ, मैं ठगा गया हूँ।।

अपने समर्थकों की नजरों में मैं बौना,
भले ही आदमकद हो गया हूँ,
पर अपने आईने में,
मैं बौना, और भी बौना हो गया हूँ,
क्योंकि अब दल और दलपति का
खिलौना हो गया हूँ।

मेरे समर्थक मेरे जीते जी मुझे कांधे पर उठाये जा रहे हैं,
मेरे कानों में गूंजता हुआ शोर है.
मैं जीत गया हूँ. मैं जीत गया हूँ ।
पर कोई मेरी आत्मा के रुदन को तो सुनो,
मैं रीत गया हूँ, मैं रीत गया हूँ ।
मैं जीत कर भी मात खा गया हूँ ।
मैं ठगा गया हूँ । मैं ठगा गया हूँ ॥

तुम....

देह को माटी बनाने पर तुला हूँ मैं,
और निशदिन याद आने पर तुली हो तुम ।
साथ में जब तक रहो
बस, मुस्कुराती ही रहो ।
आजकल क्यों खिलखिलाने पर तुली हो तुम ।
देह को माटी··· ·······
खैरियत क्यों पूछती हो पत्र के द्वारा,
जबकि खंडित कर चुकीं सम्बन्ध ।
क्यों तुम्हारी याद के संग में,
आज फिर मुझको बुलाने पर तुली हो तुम ?
देह को माटी··········
तुम कोई तारीख का पन्ना नही हो,
फाड़कर जिसको नकारा जाय ।
तुम कहीं पर थी, यहां दिखती नहीं हो,
किस तरह तुमको पुकारा जाय ।
सहानुभूति का क्षणिक सुख है,
उम्र भर मुझको रुलाने पर तुली हो तुम ॥
देह को माटी··········
सोचता हूँ, प्यास मारी जाय,
इस मरुस्थल में कहाँ है झील ।
रात में भी चल रहा हूँ मैं
हाथ में जलती हुई कंदील ।
रात भर खुद को जगाने पर तुला हूँ मैं,
नीद आँखों में बसाने पर तुली हो तुम ।
देह को माटी··········

मैं विदूषक हूँ

मैं विदूषक हूँ, हंसाता हूँ ।
पर अकेले में स्वयं को मैं,
बड़ा बेचैन पाता हूँ, बड़ा बेचैन पाता हूँ ॥

रंगमंचीय कसमसाहट में,
रोशनी की जगमगाहट में ।
थक गया हूँ पीटकर मैं पेट,
तालियों की गड़गड़ाहट में ।

कहकहों में मुस्कुराता हूँ ।
मैं विदूषक हूँ..........
दर्शकों की भीड़ से हट कर,
तालियों के शोर से कटकर ।
रो रहा हूं मैं अंधेरे में,
इक बबूली वृक्ष से सटकर ।
मिर्च आंखों में लगाता हूँ ।
मैं विदूषक हूँ..........

सत्य से इन्कार कब तक हो ?
मुखौटों से प्यार कब हो ?
सोचता हूँ मैं अकेले में,
स्वयं से प्रतिकार कब तक हो ?
चीखकर सीटी बजाता हूँ ।
मैं विदूषक हूँ..........

दोनों ही मुझे रोज मिलते हैं

चुकी हुई उम्र की औरत
और झुकी हुई कमर का आदमी,
दोनों ही मुझे रोज मिलते हैं
मुझे देखकर दोनों के हाथ
स्वागत की मुद्रा में हिलते है।
तब
औरत की आंखों में कौंधती है जवानी
तथा आदमी का हाथ दिखता है मूंछ पर।
मैं कहकहा लगाता हूं,
ताकि दोनों चौंकें।
अपनत्व बताते हुए
मुझे कौन रोके !
हिलते हैं मेरे हाथ
अपरिचित की मुद्रा में हिलते है
चुकी हुई उम्र——……
दोनों ही मुझे…………

———

हम उनमें से नहीं

विकने वाले विकते होंगे, हम उनमें से नहीं ।
तुम्हें बिकाऊ कवि चाहिए,
ढूंढो और कही ।
हम उनमें से नहीं । हम उनमें से नहीं ॥
हमने किसी राजकवि को उस्ताद नही माना,
सम्मानित औ पुरस्कार का स्वाद नही जाना ।
राजसभाएं वंचित रही हमारे गीतों से,
चने-चबेनों का रिश्ता कब जुड़ा पपीतों से ।
खाते रहे जुआर छाछ से, नही चाहिए दही ।
तुम्हें बिकाऊ कवि चाहिए, हम उनमें से नही ॥
हम पाण्डव की तरह दांव पर कविता नही लाये,
मित्रो, हमने चीर लेखनी के नहीं खिंचवाये ।
होता है अन्तर कविता में और टकसालों में,
हमने नाम नही लिखवाया लटके वालों में ।
चिन्तन से मुंह नही मोड़ना यही प्रवृत्ति रही ।
तुम्हें बिकाऊ कवि चाहिए, हम उनमें से नहीं ॥
अखबारों के सम्पादक हमसे नाराज रहे,
आम आदमी के अगुआ, हम वाआवाज रहे ।
स्तम्भों में नही, भीड़ में दिखने वाले हम,
अखबारों में नहीं, दिलों पर लिखने वाले हम ।
रहकर जन-समूह में हमने भी हर पीड़ा सही ।
तुम्हें बिकाऊ कवि चाहिए, हम उनमें नहीं ॥
तुलसी ने कब मनसबदारी को स्वीकार किया ?
कब कबीर ने फाकामस्ती से इन्कार किया ?
बेची नहीं लेखनी हमने सुख-सुविधाओं पर,
अंक नहीं पूजे है हमने, पूजे है अक्षर ।
हम व्यापारी नहीं, रखेंगे फिर क्यो खाता-बही ।
तुम्हे बिकाऊ कवि चाहिये, हम उनमें से नही ॥

कागज की नाव

महानगर के जन-सागर की लहरों में,
डूब चली मेरी कागज की नाव है ।

वेतन के हाथों बिक चुकी जिन्दगानी,
मिला न मरने को इक चुल्लू भर पानी ।
दृग में चुभते अपमानों के शूल हैं,
स्वाभिमान का टूट चुका मस्तूल है ।
ऊब चुका मन चिन्ता करे अंधेरों में,
परिस्थिति पैदा कर चुकी तनाव है ।
जन सागर.........

टंकण करती हुई उमर की दोपहरी,
दफ्तर की शुभचिन्तक बनी सांस मेरी।
रूपक छोड़ हुई तन्मय प्रारूप में,
केवल यादें खेल रही हैं धूप में ।
होती है अब ईर्ष्या सांझ-सवेरों में,
भावुकता का घटने लगा प्रभाव है ॥
जन सागर.........

मुझ जैसी गुमसुम अनगिनत इकाइयाँ,
देख रहीं वर्गों की गहरी खाइयाँ ।
महंगाई की शोभा अपरम्पार है,
हुए जर्जरित समता के आधार है ।
व्यापारिकता झांक रही है चेहरों से,
कांप रहे दृढ संकल्पों के पांव है ॥
जन सागर.........

काट रहा है समय व्यर्थ की पकड़े हठ,
चायघरों में बुद्धिजीवियों का जमघट ।
राजनीति मुखरित हो रही समाजों में,
कराह रहे सिद्धान्त स्वार्थ की बाहों में ॥
तैर रहे हैं सभी अकेले स्वार्थ में,
अपने हित से जोड़े सभी लगाव हैं ॥
जन सागर..........

मेरा नाम नहीं है

शहर के सलीकेदार लोगों में,
नहीं है, मेरा नाम नही है ॥

मै दिल और दिमाग से कोरा नहीं हूं,
शहरी शतरंज का मोहरा नहीं हूं ।
मुझे कोई प्यादे, ऊंट या हाथी की तरह
चला नही सकता,
मै अपने आप,
अपने रास्ते पर चलता हू
आम आदमी की तरह;
सलीकेदार लोग खास हैं
आम नहीं हैं ।

शहर के सलीकेदार लोगों में ।
नहीं है, मेरा नाम नही है ॥

मैं सभा-समारोहो में,
शोभा का सामान नहीं हूं ।
सुगन्ध बिखेरने वाला
आदमी की शक्ल में गुलदान नहीं हूं ।
मै विशिष्ट लोगों से मुलाकात नहीं करता,
फोटो नहीं खिचवाता,
अखबारों में जगह नही घेरता,
मुंह देखकर तिलक नहीं करता;
ये मेरा काम नहीं है ।

शहर के सलीकेदार लोगों में,
नहीं है, मेरा नाम नहीं है ॥

काट रहा है समय व्यर्थ की पकड़े हठ,
चायघरों में बुद्धिजीवियों का जमघट ।
राजनीति मुखरित हो रही समाजों में,
कराह रहे सिद्धान्त स्वार्थ की बाहों में ॥
तैर रहे हैं सभी अकेले स्वार्थ में,
अपने हित से जोड़े सभी लगाव हैं ॥
जन सागर.........

मेरा नाम नहीं है

शहर के सलीकेदार लोगों में,
नहीं है, मेरा नाम नहीं है ।।

मैं दिल और दिमाग से कोरा नहीं हूं,
शहरी शतरंज का मोहरा नहीं हूं ।
मुझे कोई प्यादे, ऊंट या हाथी की तरह
चला नहीं सकता,
मैं अपने आप,
अपने रास्ते पर चलता हूं
आम आदमी की तरह;
सलीकेदार लोग खास हैं
आम नहीं हैं ।

शहर के सलीकेदार लोगों में ।
नहीं है, मेरा नाम नहीं है ।।

मैं सभा-समारोहों में,
शोभा का सामान नहीं हूं ।
सुगन्ध बिखेरने वाला
आदमी की शक्ल में गुलदान नहीं हूं ।
मैं विशिष्ट लोगों से मुलाकात नहीं करता,
फोटो नहीं खिंचवाता,
अखबारों में जगह नहीं घेरता,
मुंह देखकर तिलक नहीं करता;
ये मेरा काम नहीं है ।

शहर के सलीकेदार लोगों में,
नहीं है, मेरा नाम नहीं है ।।

शहर सलीकेदारी बांटता है,
उनमें—
जो शहर को अपनी बाँहों में कसते है,
जो ताल के कीचड़ में
कमल-से खिलते हैं,
अलग-अलग मौके पर,
अलग-अलग अदा से हँसते हैं।
बनावटी मेरी सुबह नहीं है,
शाम नही है।

शहर के सलीकेदार लोगों में,
नहीं है, मेरा नाम नही है॥

दैहिक सन्दर्भों के बीच

दैहिक संदर्भों के बीच,
मत लाओ कोई अनुबंध।
नारी को पुरुष चाहिए
पौरुष को नारी की गंध।।

तृप्ति इक छलावा भर है,
शाश्वत, सनातन है प्यास।
सृष्टि के जन्म-दिवस से,
जारी है प्यास का विकास।
दैहिक संदर्भों के बीच,
खलते हैं नीति के प्रबंध।
नारी को पुरुष चाहिए,
पौरुष को नारी की गंध।।

कलियों को भ्रमर चाहिए,
भ्रमरों को पुष्प का पराग।
दर्पण को बिम्ब चाहिए,
बिम्बों को प्रतिबिम्बित आग।
दैहिक संदर्भों के बीच,
भले लगें चितवन के छंद।
नारी को पुरुष चाहिए,
पौरुष को नारी की गंध।

रूप, रंग, रस का सान्निध्य,
मर्यादा तोड़ रहा है।
पैजनियां पांवों में बांध,
बजने को छोड़ रहा है।

दैहिक संदर्भों के बीच,
अर्थहीन लगते प्रतिबंध।
नारी को पुरुष चाहिए,
पौरुष को नारी की गंध।।

शहर खतरनाक है!

शहर खतरनाक है,
शहर में रहता हूं,
इसीलिए कहता हूं—
शहर खतरनाक है!
जंगल से ज्यादा असुरक्षित है शहर,
शहर में पशु पालतू और आदमी हिंसक है,
अहिंसा निष्कासित है शहर से,
मैं भय की हवा में बहता हूं।
इसीलिए कहता हूं—
शहर खतरनाक है!
आदमी मशीन है शहर में,
रिश्ते व्यावसायिक है,
हया शिकार है बलात्कार की,
हर जगह दीखती है बेशरमी आवारा,
और मैं बेशरमी सहता हूं।
इसीलिए कहता हूं—
शहर खतरनाक है!
शहर की महक में जहर है,
कोलतार की सड़कों पर दुर्घटनाएँ फिरती हैं,
प्राणवायु की जगह धुआं है,
शहर में रहना जुआ है,
सूने में स्वयं को आड़े हाथों लेता हूं।
इसीलिए कहता हूं—
शहर खतरनाक है!

वन हँसने लगा है

वेलबूटों छपी साड़ी में तुम्हारी देह,
जब भी दिखी मुझको,
लगा, वन मरुस्थल के सामने हंसने लगा है।
बेलबूटों में हरीतिमा ओढ़ कर आती रही हो,
गंध का, वन का नशा-सा साथ में लाती रही हो।
आज है बेचैन मेरा मन,
पुकारूं आज किसको ?
बेलबूटों छपी साड़ी में ....

नदी की मानिंद

लेट जाओ,
नदी की मानिंद फिर से लेट जाओ,
आज मन के प्रांत में सूखा पड़ा है।
लू-लपट-सी गरम श्वासें,
सुखद-शीतल लहरियों का
परस पाना चाहती हैं।
पड़ गई तपती हुई उम्मीद पर अगणित दरारें,
आज तृष्णा का विषैला पांव में कांटा गड़ा है।
फैल जाओ,
नदी की मानिंद फिर तुम फैल जाओ,
आज मन के प्रान्त में सूखा पड़ा है।।

मत बांधो काजल की रेख में

मत बांधो काजल की रेख में,
अब उजले केश हो गये।।

रूप की नुमाइश के बीच,
यौवन की दोपहरी ढल गई।
बिन बोले जाते-जाते,
संध्या मुख पर गुलाल मल गई।

मत बांधो शब्द-जाल में,
प्रश्न सभी शेष हो गये।।

जाने क्या बात हो गई,
अब सितार छेड़ता नही।
रागों के बागों के बीच,
मैं उनको हेरता नहीं।

मत बांधो नृत्य-ताल में,
अब भगवा वेश हो गये।।

देहों के इस बजार में,
रंगों की चमक-दमक है।
कुछ चितवन, कुछ मिठास है,
आंसू में घुला नमक है।

मत बांधो मेरा मन खेल में,
दृग सहसा निर्निमेष हो गये।।

खुली हुई खिड़की से दीखता है शुक्रतारा,
और मैं तुम्हें पत्र लिखने लगता हूँ,
जबकि तुम्हारा पता जानता नहीं,
तुम्हें गैर मानता नहीं,
लिखता हूँ, शब्द देता हूँ अपने को,
लिखता हूँ, पत्र लिखता हूँ सपने को।
तुमने मेरे साथ कोणार्क देखा नहीं ... ...

शायद तुम अब मुझे,
किसी और की बांहों में समाने नहीं दोगी,
शायद, किसी और के निकट जाने नहीं दोगी।
भले ही मैं,
जयपुर के महलों में टहलूं,
या माण्डव के खण्डहरों में,
या बैंगलोर के उद्यानों में,
या महानगरों के बारों में,
या कहवाखानों में,
तुम प्रत्येक जगह मेरे पास, मेरे साथ तो हो,
अ-देह
स-स्नेह
तुमने मेरे साथ कोणार्क देखा नहीं ... ...

राजनीति के जादूगर

वे बनते रहे विधायक,
मंत्री, मुख्यमंत्री
मंत्रिमंडल की कुर्सियां भरते रहे
राई की ओट
पर्वत करते रहे
हांकते रहे फाइलों के रोगी घोड़े
रिसते रहे जनता के फोड़े
फिर भी चुनाव क्षेत्र पर उनका असर है
वे राजनीति के जादूगर है ।

पूर्व संकेत

गुड़िया के लिए लहंगा
गुड्डे के लिए कपड़े
बरातियों के लिए आवभगत का सामान
इकट्ठा कर रही है मेरी बिटिया
और मैं सोच रहा हूँ
मुझे भी यही सब करना है ।

सम्भ्रान्तों की बस्ती में नीच

उसने, साबुन के अभाव में,
पानी से मुंह धोया।
फूंक-फूंक कर धुआं भरी आंखों से,
चूल्हा सुलगाया,
घासलेट का रोना नहीं रोया।
उसने बासी-सूखी रोटी का चूरा,
नमक-मिर्च-हल्दी के साथ पकाया,
प्लेट में डालकर पोहे की तरह खाया।
आईने में स्वयं को देखते हुए,
रूखे बालों में कंघी फेरी,
चेहरे पर रेडीमेड मुस्कान टांगी,
घर पर ताला लगाते हुए उसने,
अपने आप अपने घर से विदा मांगी,
इस मिन्नत के साथ,
कि आज कोई गांठ का पूरा,
आंख का अंधा फंसे,
ताकि औंधा पड़ा आटे का डिब्बा,
सीधा व्यवस्थित होकर हंसे।
और वो चल दी,
जिस्म नोचने वालों के बीच।
संभ्रान्तों की बस्ती में नीच।।

अन्तिम इच्छा

एक मरते हुए बुजुर्ग नेता ने कहा—
"मेरा शव,
पार्टी दफ्तर से उठाया जाय।
उस पर कफन नहीं,
पार्टी का झंडा उढ़ाया जाय।
जिन्दगी भर जन-नेता रहा,
जनता की सेवा की,
अत:
जनता के चन्दे से जलाया जाय,
मेरे घर का एक भी पैसा न लगाया जाय।
एक मरते हुए बुजुर्ग नेता ने कहा.........

तमाशा न बनाया जाय

झगड़े हर जगह हैं
क्या घर में, क्या बाहर
उन्हें गरमाहट के साथ नहीं,
ठंडक के साथ निपटाया जाय,
तमाशा न बनाया जाय।

मैं तो हूँ एक विदूषक

मैं तो हूँ एक विदूषक, मुझको रोने का क्या हक !
आती है मुझे रुलाई, खिलखिला दिया करता हूँ ।।

अपनों ने, बेगानों ने,
मेरा हर रक्त तराशा ।
उन सबका दिल रखने को,
मैं खुद बन गया तमाशा ।

मेरी नियति यही है, मेरे हित यही सही है ।
कांधे के ऊपर पर्वत, पांवों के नीचे खाई ।।
आती है मुझे रुलाई..........

खुलती और मुन्दती आंखें,
जब तक सदा पनीली ।
तब तक सांसों में सुगन्ध,
तब तक जिन्दगी नशीली ।

इस रंग-रूप का मारा, मैं हूँ सचमुच आवारा ।
मंजिल अनाम है मेरी, पांवों में पड़ी बिवाई ।।
आती है मुझे रुलाई..........—....

खून-खून का रिश्ता,
वस्तु प्रयोगशाला की ।
रिश्तों का भव्य प्रदर्शन,
करती केवल चालाकी ।

आपा-धापी का मेला, और मैं हूँ सिर्फ अकेला ।
जो हाथ कर चुके काले, उनने उंगलियाँ उठाईं ।।
आती है मुझे रुलाई..........

नायक-खलनायक जैसा,
व्यक्तित्व नहीं रखता हूँ ।
हा-हा-ही-ही-हू-हू पर,
हंसता हूं या बकता हूँ ।

नाराजी छोड़ चुका हूँ, खुद को ही तोड़ चुका हूँ ।
आईने तोड़ने से क्या सूरतें संवरने पाई ।
आती है मुझे रुलाई.............

हर रात श्रीमान्...

डालना चाहते है बहुत से, आंखों में आंखें
देखना चाहते है मेरे गाल पर कई
अपने दांतों के निशान
हर रात श्रीमान ।।
होटलों में बिकती हैं शराब किस्म-किस्म की
प्लेटों में परोसा जाता है······"भांति-भांति का
तन्दूर पर सिकती है रोटियां
खाने पर उतर आती है भूखों की बारात
आधी रात तक बजता रहता है आरकेस्ट्रा
थिरकती रहती हूं मैं
जैसे बेयरों के हाथों में थिरकती प्लेटें
कोई कांटे से उठाता है मुर्गा
कोई मुर्गे की तरह उठाता है आंखें मुझ पर
कोई दांतों से काटता है तली मछली
कोई काटना चाहता है चिकोटी मेरी बगल में
कोई पकड़ता है दोनों हाथों से गिलास
कोई पकड़ना चाहता है दोनों हाथों से मेरी कमर
कोई दबाता है अपने सहयोगी का कन्धा
कोई बढ़ाता है हाथ मेरी छातियों की तरफ ।
और मैं खाली प्लेट या बोतल की तरफ
अलग हट जाती हूं
बेहयाई से बिखेरे मुस्कान ।
हर रात श्रीमान !

एक तुम भी हो

कुरते की तरह विवेक खूंटी पर टांगने वाले लोगों में
एक तुम भी हो ।
बिस्तर की तरह बिछ जाते हो हर एक के नीचे
चाय की प्याली की तरह हर एक को दे देते हो आबरू
अपनी छोटी-मोटी जरूरत के लिए
आबरू खोकर
आबरू से रहने का भ्रम पालने वालों में
एक तुम भी हो ।
पुरखों का मकान बेच कर
किराये के मकान औकात से बाहर मान
कब तक बदलते रहोगे धर्मशालाएं
ये पूछने का हक नहीं है मुझे
पूछेंगे तुमसे वे यात्री
जिनके लिए बनी हैं धर्मशालाएं
खाते-कमाते भी अपने को धर्म-संकट में डालने वालों में
एक तुम भी हो ।
चमचे तो घी के पात्रों में रहते हैं
लेकिन तुमने विष्ठा को घी मान लिया है
यह भी न जाना कि वह पशु की है या मनुष्य की
नासमझी की हद तक जाकर खुद को समझदार मानने वालों में
एक तुम भी हो ।

धूप

धूप हर जगह जाती है
तिमिर को हटाती है
तुम भी धूप बनो
हर जगह जाओ
तिमिर को हटाओ ।

खिड़की से, द्वार से, छिद्र से
जहां से राह मिले वहाँ से
ये मत पूछो
अंधेरा मिटाना है कहां-कहां से ?
धूप जहां होती है
तम नहीं होता
स्याह अन्धेरा और भ्रम नहीं होता
इसीलिए कहता हूँ
बनना हो, तो धूप बनो
सुलगते सूरज की ऊर्जा बसाओ ।

धूप को पीते हैं सागर
बादल जनमाते हैं
धूप को पीते खेत
फसलें उगाते हैं
धूप में आग है
धूप बेदाग है
धूप अंधेरों को खाती है
वमन नहीं करती
तुम भी वमन मत करो
सुविधाओं की छांव की ओर
गमन मत करो
तपो और तपाओ ।

खाली किये जा रहे मकान के प्रति

बंधा हुआ सामान देखकर तुम उदास हो मेरे घर,
तुम्हें देखकर इस हालत में भूल गई है नींद डगर ।
बिजली के पीले प्रकाश में दिखते हम-तुम रोगी से,
भोर हमें बिछुड़ा देगी, इस भय से हुए वियोगी से ।
देती रही आश्रय हमको तेरी चारदिवारी,
सहती रही हर इक मौसम को, हिम्मत कभी न हारी।
वस्त्र और तस्वीर टांगने हमने कीलें ठोकीं,
सहते रहे दु:सह दु:ख तुम, पर नहीं हथौड़ी रोकी ।
वो नल से पानी का झरना, वो कपड़ों का धोना,
श्यामा की म्याऊं-म्याऊं से बाकी बचा न कोना ।
पीते रहे धुआं चूल्हे का, लेकिन बुरा न माना,
एक जन्म क्या, सात जन्म मुश्किल अहसान चुकाना ।
सुनते रहे पति-पत्नी की कड़वी-मीठी बातें,
कई बार देखा है तुमने हंसते, प्यार लुटाते ।
मिली प्रेरणा तुमसे समझ सके शिशुओं की भाषा,
सौहर के गीतों को गुंजवा दे दी तुमने "आशा" ।
यह नन्ही सौगात आज हम साथ लिये जाते है,
बड़ी लाज आ रही, तुम्हे कुछ नही दिये जाते हैं ।
बिटिया की शादी में कन्यादान कराने आना,
जाते हुए मित्र की बातें, मित्र, भूल मत जाना ।
आ न सकोगे पर आशीष भिजाना माटी के घर,
बिटिया मेरी नहीं, तुम्हारे ही आंगन का है स्वर।

भीतर भी आग लगी बाहर भी आग

वो तुलसी क्यारे पर रख रही चिराग ।
भीतर भी आग लगी, बाहर भी आग ॥

दिन के ढलने के संग खिसक रहा रूप
गरमाहट खोती-सी संध्या की धूप
पता नहीं प्रियतम का गूंगा है नेह
अनब्याहे सपने हैं, अनब्याही देह
महक रहा श्वासों का शापग्रस्त बाग ।
भीतर भी आग लगी, बाहर भी आग ॥

फूल रही फलविहीन तरुवर-सी काया
नीड़ बसाने कोई पाँखी नहीं आया
अक्षत है मधुर-मदिर आज भी इरादे
झरी नहीं पतझर में वासंती यादें
लगा नहीं चुनरी पर सिंदूरी दाग ।
भीतर भी आग लगी, बाहर भी आग ॥

कई मानताएं लीं मौके-बेमौके
मन्दिर-मन्दिर चढ़कर कई देव धोके
सो न सकी कई बार कई-कई रात
सूने में दर्पण से खूब हुई बात
जागी प्रत्येक सुबह, जगे नहीं भाग ।
भीतर भी आग लगी, बाहर भी आग ॥

ये अलसेशियन नहीं हैं

अलसेशियन की तरह साहबों के बंगलों पर
डटे है जो, ये अलसेशियन नहीं है।
ये साहबों के आगे पूंछ की मुद्रा में हिला रहे है नितंब
निकाल रहे लार टपकाती जुबान
डांट और गालियां खा कर
सूंघ रहे हैं साहबों के जूते
दिखाई देते हैं मेम साहबों के दायें-बायें बाजारों में
वक्त-बेवक्त अपने जैसों पर भौंकते हुए
क्योंकि साहबों और मेम साहबों को मालूम है
इनकी खुराक और आदतें
न तो ये दिखते हैं अदने आदमी के द्वार पर
न इन्हें पालता है अदना आदमी
हां, ये पैदा जरूर होते है अदनों की बस्ती में
लेकिन
एक प्लेट मटन, साहबों की सोहबत
और साहबों से मिलने वालों से
पहले मिलने के लिए
शामिल हो जाते है
अलसेशियन बिरादरी में
अलसेशियन की तरह..............
डटे है जो.........

और मैं रूमाल नहीं हूँ

इस शहर का प्रत्येक असरदार आदमी चाहता है
अपने घिनौने हाथ पोंछने के लिए रूमाल
और मैं रूमाल नहीं हूं ।

पारसी थिएटर के नाटक की तरह मंचित हो रही है राजनीति
ब्रह्मानन्द के भजन की तरह उच्चरित हैं कुछ नाम
अखबार निपटा रहे हैं भागवत का काम
जबकि मेरा रास्ता इनका रास्ता नहीं है
मेरा और इनका वास्ता नही है
इनके रास्ते पर हैं दुकानें फरेब की
भय की
तलवारों की
ढालों की
और मैं ढाल नहीं हूं ॥

राजनीति की वर्णमाला में
अ अनार का नही, अन्याय का है
प पतंग का नही, पंजे का है
ग गणपति का नहीं, गाली का है
ह हलवाई का नहीं, हलधर का है
स सलाम का
म मक्खन का
द दलाल का
शहर के खरीदो-बेचो लोग चाहते हैं दलाल
और मैं दलाल नही हूं ॥

रूप और रुपये को वगल में दबाकर
पढ़ रहे हैं मसखरे त्याग का घोषणा-पत्र
सुबह-सुबह मन्दिरों में करते हैं दर्शन
रात में देखते हैं होटलों में कैबरे
महँगे सेंट और इत्र की महक के नीचे
बह रही बदबू
होटलों में भरे हैं रात के मेहमानों से कमरे
सड़कों पर खाली नहीं है पेशाबघर
आधुनिक दुशासन क्या खींचेंगे चीर
द्रौपदियाँ स्वयं चीर के खिलाफ हैं
प्रत्येक आतुर है देने को जवाब
और मैं सवाल नहीं हूँ ॥

कभी हमारे घर पर भी....

कभी हमारे घर पर भी दूध देती थी गाय
पर आज—
दूध बोतल में आता है
रसोईघर में टंगी छाछ विलोनी
अम्मा के जमाने से
छाछ अब घर में नहीं बनती,
बाजार से आती है
मक्खन
अब हमारे घर में कोई नहीं खाता है
कभी हमारे घर............

पहले रोज बनती थी दाल
अब रोज नहीं बनती
दालबाटियां महीनों तक नहीं बनतीं
बघार से जीरा नदारद है
ये सब गृहिणी की नहीं
उसकी शरारत है
जो महंगाई बढ़ाता है
कभी हमारे घर..............

मेहमान पहले जब आते थे
हम स्वागत करते थे
करते थे मनुहार
श्रद्धा से खिलाते-पिलाते थे
मेहमान अब भी आते है
और हम चिड़चिड़े हो जाते हैं
अतिथि का आना
अब नहीं सुहाता है
कभी हमारे घर ....

पहले रुकते नहीं थे कामकाज
और आज
रुपयों के अभाव में सब कुछ रुक जाता है
ऐसे वक्त उठा रहने वाला सिर
सहसा झुक जाता है
जो लेनदेन करता है
हमारी खुशी रहन करता है
देता है बाद में
पहले झल्लाता है
कभी हमारे घर............

सवालों के सलीब पर टंगा है आम आदमी

सवालों के सलीब पर आम आदमी को टांगकर
वे, कल भी भाषण दे रहे थे
आज भी भाषण दे रहे हैं ।

आम आदमी टंगता रहा है
सवालों के सलीब पर
और वे बैठते रहे हैं
सज्जित मंचों पर, कुर्सियों पर

छिदी हुई आम आदमी की हथेली
अपने लहू से तर है आम आदमी का हाथ
और उनके परचम फहराते हाथ
करकमल हो गये है
और वे माननीय
ये स्वीकारते ज्योति प्रज्वलित कर रहे हैं
अभी अन्धेरा है
अभी अन्धेरा है, अन्धेरा है
बोल रहा है उनसे भी पूर्व
सलीब पर टंगा आदमी

लेकिन सलीब पर टंगे आम आदमी के पास
ध्वनि विस्तारक यन्त्र नहीं है
भीड़तन्त्र नहीं है
और वे
सवालों के सलीब पर आम आदमी को टांगकर,
तालियों की गड़गड़ाहट ले रहे हैं।
वे कल भी भाषण दे रहे थे
आज भी भाषण दे रहे हैं ।

वे सवालों के सलीब पर आम आदमी को टांगकर
खास हो गये
अब
शासकीय सुविधाएं उन्हें प्राप्त हैं
रहने को बंगला
आने-जाने को कार
सचिव, सलाहकार
अब व्यवस्थाएं बढ़ गई
बढ़ गये दौरे
अब आम आदमी को सवालों के सलीब पर टांग
वे फाइल देखते हैं
न तो सवालों का सलीब दिखता है
न आम आदमी
अब उन्हे दिखता है
स्वयं का भविष्य
वे अपने वर्तमान में अपने कल के लिए
बेहतर सम्भावनाएं एकत्र कर रहे हैं
बहुजन हिताय जन-जन सुखाय
कहने को कह रहे है
वे कल भी भाषण दे रहे थे
आज भी भाषण दे रहे हैं।
लगता है सवालों की सलीब पर टंगा आम आदमी
इनके द्वारा उतारा नहीं जायेगा
और न मारा जायेगा
क्योंकि ये मार नहीं सकते
ये आम आदमी को
सवालों की सलीब पर टांगे रखना चाहते हैं

ये उड़ते हैं, खड़े नहीं रहते
कल भी हवा में बह रहे थे
आज भी हवा में बह रहे है

सवालों के सलीब पर टंगा है आम आदमी
वे कल भी भाषण दे रहे थे
आज भी भाषण दे रहे है।

प्रतिबिम्ब

दो निर्वसन नादान
पूरक जिस्म,
भूख बुझाने
एकाएक एक हो गए।
वे हम और तुम नहीं थे,
थे आदम और हव्वा;
उनके प्रतिबिम्ब
हम अनेक हो गए।

जरूरत

जिस्म को
जिस्म की जरूरत है।
यह भी
एक किस्म की जरूरत है।

रोटी हँसे...

रोटी हंसे रूप के ऊपर,
रूप पसारे हाथ
बेशर्मी के साथ ।

नंगी देह नितम्ब हिलाए,
बोले—अब क्या लोगे ?
भूख आँख में काजल आंजे,
प्रेम पीलिया भोगे ।
सपने हुए अनाथ ॥

अधर निगोड़े रुपया पकड़े,
नेह नकारे आज ।
बूढ़ा चिन्तन आकुल-व्याकुल,
पेट वसूले व्याज ।
वाह रे दीनानाथ !!

रोटी हँसे रूप के ऊपर,
रूप पसारे हाथ,
बेशर्मी के साथ ।

भूख जलाती नहीं है

भूख जलाती नही है,
गलाती है
जीवन को, इन्सान को !
भूख,
अगर जलाती होती,
कभी की आग लग गई होती,
जनता,
अधाधुन्ध महंगाई नहीं ओढ़ती,
जग गई होती !

सत्ताधीश,
नंगों और भूखों के बीच,
राशन की जगह,
भाषण नहीं देते,
साल दर साल मुटाते,
कुर्सियों में धंसे नहीं रहते ।

पर--
भूख जलाती नही है,
गलाती है,
जीवन को,
इन्सान को,
आपके--हमारे,
ईमान को ।

लहू का सौदा

गोरा तन था, पावन मन था, रूप सलोना,
और गोद में था उसके पीला-सा जीवित एक खिलौना ।

उसके रतनारे नयनों में काजल की भरमार नहीं थी,
अरुण कपोलों पर कोई भी पौडर की दीवार नहीं थी ।
माथे पर बिंदिया थी उसके, मांग बीच सिन्दूर नहीं था,
मीठी थी आवाज़ गला उसका बिलकुल बेसुर नहीं था ।
बिछुड़ियां पांवों में थीं, पैजनियों की परवाह नहीं थी,
था उसको सन्तोष इसी में उसकी कोई चाह नहीं थी ।
किन्तु फटी लिपटी साड़ी से हाय जवानी झांक रही थी,
और बेशरम आंख दुनिया की उसकी कीमत आंक रही थी ।
मैं मरीज की नब्ज़ दबाये उसकी हालत देख रहा था,
वह मरीज दुबला-पतला-सा उससे आंखें सेंक रहा था ।
मैंने नज़र उठाई पूछा, मेरे लायक क्या सेवा है,
वह बोली-जी, मुझे कह रहे, नाम मेरा साहब, रेवा है ।
पूछ रहे आप कि मेरे पीछे लग गई कौन बीमारी,
तीन जीव भूखे बैठे हैं घर में आ बैठी बेकारी ।
हर जीने वाले मानव को जीने का अधिकार चाहिए,
रोटी, रोजी, रहने को घर, मीठा-मीठा प्यार चाहिए ।
देखो, भरी जवानी में ही सूख गई है मेरी छाती,
ये मेरा मुन्ना भूखा है, इसको दूध पिला ना पाती ।
इसीलिये तो मैं आई हूँ इसे जिलाने, उन्हें जिलाने
जन्म-जन्म का ऋण उतारने, मुक्ति पाने, खुद मिट जाने ।
लहू बेचने मैं आई हूँ, मेरे लहू का मोल लगाओ,
मेरे लहू से शीशी भर लो, इंजेक्शन की सुई चुभाओ ।
उन्हें लहू दो मरणासन्न वे, उन्हें लहू दो जान बचाने,

मेरा लहू उन्हें दे डालो, उनका तन बलवान बनाने ।
मैं बोला, कुछ रुपये चाहो बहना, तो मुझ से ले जाओ,
मैं बोला, धीरज मत त्यागो, मत नयनों से नीर बहाओ ।
वह नहीं मानी, वह तो मुझ को लहू बेचने को आई थी,
ऐसी नारी मैंने जीवन में न कभी पहले पाई थी ।
जब होकर लाचार मैंने उसकी बाहु में सुई लगाई,
उंगली कांपी, मन थर्राया, थी मेरी आंखें भर आई ।
उसने मुझको लहू दिया था, मैंने उसको दाम दिये थे,
प्राणों के अमृत के बदले मैंने चन्द छदाम दिये थे ।
बेच लहू वह चली गई, अपने बच्चे को गोद उठाये,
अपनी गीली नजर झुकाये, आंचल में ईमान दबाये ।
यह कविता है सही कहानी, मेरा पाना उसका खोना,
सावधान कविता के पाठक, कविता पढ़ मत मन में रोना ।

गोरा तन था, पावन मन था, रूप सलोना,
और गोद में था उसके पीला-सा जीवित एक खिलौना ।

मरने से पहले

जरा सूरज अस्त तो हो जाने दो,
मेरी सांसे पस्त तो हो जाने दो।
मौत, मैं साथ तेरे चल नहीं सकता,
कफ़न का बन्दोबस्त तो हो जाने दो॥

रोटी जैसा चाँद

ये रोटी जैसी प्यारा-प्यारा चांद,
हर पूनम की रात गगन पर आता है।
तारों और सितारों बेकारों का दल,
रोटी समझ अमावस तक खा जाता है।

गीत

कुंठित है अपने दृष्टिकोण, स्वीकार करो ।
चिन्तन बीमार हो रहा है, उपचार करो ॥

है मूक—बधिर की तरह आज जागृत विवेक
हम सब अंकित कर रहे स्वार्थ के शिला-लेख
कद भी बढ़ता जाता है पद के साथ-साथ
लेकिन छोटे हो रहे हमारे नित्य हाथ
यह बात सत्य है, इससे मत इंकार करो ।
चिन्तन बीमार हो रहा है, उपचार करो ॥

सुख, कमर झुका चल रहा आज कच्ची वय में
बालिग खुशियों के गीत मर्सिये की लय में
उत्सव के दिन हर घर में गाये जाते हैं
आंसू मुसकानों में दफनाये जाते हैं
अर्थ के लिये निज पर मत अत्याचार करो ।
चिन्तन बीमार हो रहा है, उपचार करो ॥

यह मान रहा क्या, स्वाभिमान के ज्ञापन में
हम तन्मय है अपने सतही विज्ञापन में
भूख की आग में पिघला दी हमने दृढ़ता,
तर्कों से तोड़ रहे हम अपनी नैतिकता
कागज के फूलों का मत व्यर्थ प्रचार करो।
चिन्तन बीमार हो रहा है, उपचार करो ॥

वसंत नगरों में नहीं आता

वसन्त नगरों में नहीं आता !
नगरों में आते हैं वसन्त की तरह नेता ।
अभिनेत्रियां, अभिनेता,
वसन्त नगरों में नहीं आता !!

नगरों में सरसों बोई नही जाती
सरसों का तेल निकाला जाता है
सरसों का तेल सस्ता नहीं है
नगरीय सड़कों से जुड़े हैं गांव
वाहनों पर लद कर
वसंस किसी वाहन पर लद नहीं पाता-
वसंत नगरों में नहीं आता !!

न हमने देखे और न देख पाएंगे
आम के मौर अमराई में आएंगे
नगरों में आम के पेड़ नहीं हैं
आम रास्ते है
हम कोकिल की कूक के रेकार्ड
कभी-कभी सुनते हैं
वासंती राग कोई नही गाता
वसंत नगरों में नहीं आता !!
गांवों में होते होंगे टेसू के फूल
न ये शहरी हुए न हो पाएंगे

गांव के जाये टेसू के फूल
शहरी बाजारों के बीच नहीं आएंगे
दहकानी फूलों से जुड़ा नहीं नाता
वसंत नगरो में नही आता !!

केशर तम्बाखू में खाई जाती है
कैरी की महक सेन्ट से आती है
वसंती रंग राजनीति के झंडे में है
शहर मे वसंत—उत्सव
विलास--प्रदर्शन है
आनंद को दबाये है भय
कला के ऊपर धन है
ग्वाले डेरियों में हैं, ग्वालिनें घरों में.
रास अब कोई नहीं रचाता
वसंत नगरों में नहीं आता !!

वसंत राजनीति नही पढाता
वसंत सिनेमाघर की सीढ़ी नहीं चढ़ता
वसंत सरसों उगाता है, तेल नहीं निकालता
वसंत शहरी गुलाबों-सा टेसू नहीं पालता
वसंत सेन्टों से नहीं महकता
वसंत दरख्तों पर नवजीवन लाता
वसंत नगरों में नहीं आता !!!

आता है, केवल मुझे आता है

घर फूंक कर हाथ सेंकना
मुश्किलों में प्रफुल्लित नजरों से देखना
मुझे आता है, केवल मुझे आता है ॥

क्योंकि मैं राजनैतिक मदरसे में—
पढ़ा नहीं हूं
सत्ता की कुर्सी पर बैठने
जनता के कांधों पर चढ़ा नहीं हूं
मैं जनता के बीच की इकाई हूं
आम आदमी का दर्द मेरा है
मेरे पास तरह-तरह के मुखौटे नहीं हैं
सिर्फ अपना चेहरा है
मेरा चेहरा अखबारों के काबिल नहीं है
क्योंकि विधान सभा या संसद
अथवा मंत्रीपद
मेरी मंजिल नहीं है
अखबार रोज नया आता है
पुराना रद्दी में जाता है
पड़ोसी का सुआ राम--राम गाता है ॥
घर फूंक कर..........
मैं कपड़े पहनता हूं, देह पर टांगता नहीं हूं
आबरू ढांकता हूं
आबरूदारी का प्रमाण-पत्र मांगता नहीं हूं
जिस्मों की नुमाइश का अधिकार
जानवरों को है
क्योंकि उनके लिए पोशाक नहीं है

नग्नता उनके लिए शर्मनाक नहीं है
आपके लिए क्या है, आप जानें
मैं तो इतना जानता हूँ
आज का आधुनिक
एक—दूसरे को
हाथ से नहीं आँखों से खाता है ॥
घर फूंककर…… …… …

जहाँ व्यापार का अर्थ ठगी है
कैबरे मनोरंजन है
भोंडी हरकतें दिल्लगी है
रुपया कल्पतरु है
रूप पेटभरू है
अंकों का प्रभाव अक्षरों से ज्यादा है
जहाँ हर खेल में दादा है
वहाँ मेरी सहमति नहीं है
मैं चाहते हुए भी इनका विरोध कर नही सकता
हवा से लड़ नही सकता
कई बार क्रोध
आंखो में छाता है ॥
घर फूंककर ……………

———

वो...आज...भी...

छिपकली की पूंछ
छिपकली से कट कर भी सहसा
बेजान नहीं होती
और
वो भी बेजान कहां हुई है?
सपनों से कट कर
अपनों से हट कर
वो आज भी
छिपकली की कटी पूंछ-सी
हरकत कर रही है
क्योंकि वो जानती है
यहां के लोग
डरते है छिपकली से
छिपकली की हरकत करती
कटी पूंछ से
और उस औरत से
भय खाता रहा है वक्त
जिसकी शोहरत से
वो आज भी सुनसान कहाँ हुई है?
बेजान कहाँ हुई है
सपनों से कट कर—!
अपनों से हट कर—!

पाप की बहती नदी है ये...

नाव या जलयान तो तिरते नही इसमें
तैर कर खुद पार करना है
डूबना मत
पाप की बहती नदी है ये ।

सृष्टि के आरम्भ से उथली न हो पाई,
खो गये युग गोद में इसकी
किन्तु अब तक ये न खो पाई
रूप, रंग, रस, रास, सुख-दुःख के
गीत के आलाप की बहती नदी है ये ।

पुण्य तो इसका जन्म से ही विरोधी है
पास इसके आ नहीं सकता ।
थाह इसकी पा नहीं सकता
कामिनी, कंचन, सुनहरे मृग
घाट पर इसके विचरते है ।
मोक्ष का क्या काम इसके तट
कामना के ताप की बहती नदी है ये ।

आप भी तो उसे जानते हैं !

मैं उसे देखता हूं इन दिनों,
एक स्तरहीन आवारा लड़की की तरह,
भटकते हुए ।

लड़कपन की उम्र में वह
ऐसी नहीं थी
एक ईमानदार नैतिक लड़की की तरह
सही थी ।
पर अब,
उम्र से जवान होने के बाद भी
प्रौढ़ता का काइयांपन
उसमें समा गया है ।
अभावों का हुजूम
आंखें मूंदकर
उसके नारीत्व को खा गया है ।
इसीलिए
शायद इसीलिए
वह अब बेझिझक हुजूम में रहने लगी है
हर उम्र के, हर ढंग के लोगों से
साफ-साफ लेने-देने को कहने लगी है
बेशर्मी के साथ
आंखें मटकते हुए । मैं उसे............

जी हां,
उसके लिए सुबह-शाम एक जैसे हैं
क्या आपके पास
बैंक बेलेंस वाली चेकबुक

अथवा खर्चने को रुपये-पैसे है ?
यदि हैं, तो वह आपसे मिलेगी
सुबह-शाम जब आप चाहें
आपका घुटना सहलाने
या हाथ दबाने,
आएगी आपके बैठक के कमरे में
अपने बेशरम कहकहे छोड़ जाएगी
अपने अधकटे बाल झटकते हुए ॥ मैं उसे.........

उसकी दुपहरी
उसकी नहीं
कारखानों—दफ्तरों की है
मजदूरों से चपरासी
चपरासी से बाबू
बाबुओं से छोटे-बड़े अफसरों की है ।
वह,
काम करने और कराने वालों की संधि है
आंख वाली अंधी है
यों
आम लोगों की भाषा में
सार्वजनिक होकर भी खूबसूरत है
भले ही उसके चेहरे पर दाग है
फिर भी वो एक औरत है, आग है
ऐसा हाथ सेंकने वाले बताते हैं
गिलास से पानी गटकते हुए ॥ मैं उसे.........

वह
दिन अलग लोगों
रात अलग लोगों के साथ में बिताती है

संत्री से मंत्री तक सटी नजर आती है
उसके माध्यम से
हर असंभव प्रकरण संभव हुआ है
उसके एक तराशे हुए जिस्म को
अनगिनत लोगों के बेकाबू हाथों ने
छुआ है
और वह
बुरा नही मानते हुए
खिलखिलाती दिखी है
वह
लोगों से मिलती है
हाथ मिलाते हुए
विदा हो जाती है
हाथ झटकते हुए ॥ मैं उसे..........

उसकी रातें
डाक बंगलों, होटलों
रात के मेहमानों के कमरों में कटती है
कल ही एक साहब बता रहे थे
औरों के मुकाबले में
वह बड़े सस्ते में पटती है
एक नहीं, चौदह भाषाओं की जानकार है
और मैं सोचता हूँ
कहां गई उसके बुजुर्गों, गुरुओं की धारणा
इसका भविष्य चमकीला है
यह बड़ी होनहार है ।
इसमें ताज्जुब की क्या बात
वह जिनके साथ में बिताती है रात

जिस्म नुचवाती है
जीने को पीती है
पेट भरने को खाती है ।
खाना, पीना और जीना
अब उसके आगे हैं
ज्ञान-ध्यान
दुम दबाये भागे हैं
मेरे जैसे फालतू लोग
दिखते हैं उसे
खटकते हुए ।। मैं उसे..........

एक बात कहूं आपसे
वो बड़ी दबंग है
दरियादिल है
और हां
आपको भी जानती है
अपना मानती है
क्या आप
उसे अपना नहीं मानते है ?
हलफनामे पर कह सकते हैं
कि आप उसे नहीं जानते हैं ?
उसका कहना है आपके बारे में—
आपने उसे जरूरत पड़ने पर खरीदा है
उसका निर्वस्त्र जिस्म देखा है
बदले में उसे कुचलते-मसलते हुए
उसके मुंह पर
बेलेट पेपर या करन्सी नोट फेंका है
अब आप समझे ?

उसका नाम हिन्दुस्तान की व्यवस्था है
जो बुरी-भली होकर भी आपकी है
पुण्य की अथवा पाप की
आप उसे नकार नहीं सकते ।
आप तो घोषित अहिंसक हैं
घोषणा के साथ खुलेआम
उसे मार नहीं सकते
मैं देख रहा हूँ
उसके सलीब से कांधों पर
उसके संकल्पों को लटकते हुए ॥ मैं उसे……….

टंक यंत्र के अक्षर-सा स्वाभिमान !

भूख की धूप में
मोम के पुतले-सा स्वाभिमान,
पिघल गया,
गला स्वाभिमान,
उदर-पूर्ति हेतु,
वेतनभाजन बन,
मिसलों पर झुका हुआ,
सरकारी-गैर सरकारी
तृतीय श्रेणी के पुरजे की शक्ल में-
पेन्शनयाफ्ता होने तक,
टंक-यंत्र के
अक्षरों के रूप में,
उंगलियों के संकेत पर,
उठने-गिरने को,
आखिर कल ढल गया
भूख की धूप में..............

प्रौढ़ा बांझ का गीत

गोद का तकाज़ा है, कोख का तकाज़ा है
एक शिशु आंगन को दो।
एक शिशु आंगन को दो ।।

सूरज पुजवाने को दोपहरी ठहरी
सोहर के गीतों को मांग रही देहरी
दो से हम एक हुए एक नहीं बढ़ पाया
आज तक प्रतीक्षा है, वृक्ष नहीं फल पाया
गोद का तकाज़ा है, कोख का तकाज़ा है
एक पुष्प पूजन को दो।
एक शिशु आंगन को दो ।।

सूने में नागिन-सी, कसती है कंचुकी
अजूठे उरोजों में पीर है रुकी-रुकी
सखियों के भिजवाये, शिशु-वस्त्र हंसते है
झुनझुना बजाने को हाथ बाट तकते हैं
गोद का तकाज़ा है, कोख का तकाज़ा है-
बालकृष्ण आंगन को दो।
एक शिशु आंगन को दो ।।

डला नहीं है अब तक बैठक में पालना
मुश्किल है नारी का ममता को टालना
डिठौना लगाने की साध नहीं सध पाई
थाली के बजने की शुभ घड़ी नहीं आई
गोद का तकाज़ा है, कोख का तकाज़ा है—
एक छवि दर्पण को दो।
एक शिशु आंगन को दो ।।

अग्नि-परीक्षा के बाद की अनुभूति

ये लिखे हुए पृष्ठ,
मेरी डायरी के हिस्से है।
इनमें–
मेरे अपने किस्से है॥

किशोरवय की देहरी पर खड़े हो कर कभी,
सौन्दर्य-शास्त्र मैंने भी पढ़ा था।
रूप का शीशमहल मैंने भी गढ़ा था।
पर ...... सपने सच्चे नहीं होते,
अपने होकर भी अपने नही होते।
मेरे साथ भी ऐसा ही हुआ,
मुझे महकते फूलों की जगह
दहकते शोलों ने छुआ।
मेरे अरमानों की फसल पर,
लहलहाने से पहले ही ओले पड़ गये।
मुझसे लिपट गई आग की लपटें,
चम्पई देह पर फफोले पड़ गये।

मेरे काले, घुंघराले, रेशमी बाल,
स्वाह हो गये।
कमान जैसी भौहें खंडित हो गई
पलकें आंखों को नकार गई
मैं जिस जगह ललाट पर लगाती थी बिंदिया,
उस जगह एक काला कष्टदायी चट्टा हो गया
अपने आप के प्रति मेरा मन
बेहद खट्टा हो गया।
तब ही किसी ने कहा,
बधाई !

तुमने–अग्नि परीक्षा दे कर,
सीता की शानदार परम्परा निभाई ।
मुझे लगा,
मैं कालजयी हूँ ।
इसीलिए, शायद इसीलिए मैं जो गई
आग मुझे निगल नहीं पाई ।
मैं आग की लपटों को सौंपकर अपनी जीवित देह,
आग को पी गई ।

कपोलों का चम्पई रंग असमय ही भभूत रमा गया
जीने की जिजीविषा का सकल्प
आखिर मुझे जिला गया ।
मैं जब अस्पताल से घर आई
जब मैंने पहली बार अकेले में आईना देखा,
मैं बिना आग के पुनः सुलग उठी ।
मेरे झुलसे हुए चेहरे पर चढ़ी मेरी बड़ी-बड़ी आंखें
पनीली हो गई ।
और तभी मुझे सहसा याद आया,
मैं सीता की सहधर्मिणी, कालजयी हूँ ।
मैंने अग्नि-परीक्षा दी है,
दया की भीख दामन पसार कर नहीं ली है
मेरा आंचल पूर्व में ही जल चुका है ।
मेरा दायां हाथ,
मेरे भावुकता भरे सपनों को चिता पर धर चुका है
अब मुझे एक उदाहरण के रूप में रहना है
जीवन ऐसे भी स्वाभिमान से जिया जा सकता है,
निराशा भरे लोगों से कहना है ।

ये मुझे तिराएँगी

मैं
विद्यालय की कक्षा में
पढ़ने की किताबें फाड़ कर
बनाता रहा
कागज की नाव
और अब
फटे हुए कागज पर
लिख रहा हूँ कविताएं,
उन्हें मैं तिरा चुका
ये मुझे तिराएंगी ।

क्या समझें वे लोग....

काव्य, कला, चिन्तन, क्या समझे वे लोग
दिल–दिमाग से जिनके मुखर राज-रोग ।

कूटनीति है जिनका जीवन–आधार
दिखते हैं दसों दिशा जिन्हें चाटुकार
करनी और कथनी में रखते हैं भेद
अपने आलोचक को कहते गद्दार
असहनीय, कुर्सी का है जिन्हें वियोग ।।
काव्य, कला.... ....

भाषण में सांस्कृतिक गरिमा का शोर
हाथों को हिला–हिला शब्द रहे तोड़
दलदल में धंसे हुए दल के सिरमौर
सपनों में पकड़ रहे दिल्ली की डोर
जोड़ रहे रूप और रुपये का योग ।।
काव्य, कला........... ....

जुटा रहे अपने घर ऐशो—आराम
सब्जबाग दिखला कर बना रहे काम
गरीबी मिटाने में हो गये अमीर
निर्देशन देते है नित्य सुबह–शाम
नंगी निर्धनता पर कर रहे प्रयोग ।
काव्य, कला................ ...

सांय-सांय रात है....

सांय-सांय रात है,
रात का अंधेरा है
जुल्म हो गये जवान
इस अंधेरी रात में।
दीप के तले अंधेरा
पल रहा है इसलिये
फर्क आ गया है आज
आदमी की जात में।
सांय—सांय ....

वासना खिला रही है
गोलियाँ अफीम की
प्यार खा अफीम
ऊंघने लगा है बार-बार।
जल रहे चिराग जर्द
बुझ रहे मरीज से
जिनकी रोशनी में
हो रही है खूब लूट-मार—
सांय-सांय............

भोर अभी दूर है
जागते रहो, यह बोल कर
ईमान सो गया।
चोर-चौकीदार
गले मिल रहे हैं स्वार्थवश
स्वार्थ बोलने लगा
सत्य मौन हो गया।
सांय—सांय ....

रोटी हूँगे....

गंगाजल तो दो

प्राण कण्ठ में अटक रहे हैं, तुलसीदल तो दो,
नैतिकता दम तोड़ रही है, गंगाजल तो दो ।

तन की, धन की भूख बढ़ी, बढ़ कर उत्क्रांत हुई
खण्डित हुई व्यवस्था, शस्य-श्यामला क्लांत हुई
व्यक्ति, व्यक्ति को शंका के घेरे में चोर दिखा
भ्रष्टाचार सिकन्दर जैसा चारों ओर दिखा
सुख-सुविधा तो दे न सके, पर पल-दो पल तो दो ।।

कुण्ठा ने दिल और दिमाग का रिश्ता तोड़ दिया
पुनः महाभारत दोहराने, छुट्टा छोड़ दिया
ये अशोक का वृक्ष बोझ से टूट न जाए कहीं
'यदा-यदाहि धर्मस्य.' न समय दोहराए कहीं
दे न सके सूरज को रोटी, रक्त-कमल तो दो ।।

जन-सेवा की जगह स्वार्थ की नीति आ बैठी
राजनीति धनिकों से अपने दृग उलझा बैठी
सादा जीवन-उच्च विचारों में मतभेद हुए
राह बनाने वाले दिखे खोदते आज कुएं
शोक-सभा करने से पहले, इसे गरल तो दो ।
रहने दो भाषण-आश्वासन, इसे अनल तो दो ।।

तीन बैंड वाला ट्रांजिस्टर और गम

पुराने रेडियो के खरखरे-से स्वर में
मेरे तीन बच्चों की मां ने
मुझसे कहा—
सुनते हो, जी !
तीन किश्तों पर तीन बैंड वाला
एक ट्रांजिस्टर ले आओ ।
और मैंने अपनी खाली हथेलियां मलते हुए कहा
पहले बड़ी बिटिया को मदरसे पहुंचाओ
दूसरे राजा बेटे को दूध नहीं, तो चाय पिलाओ
तीसरे जो नयी-नयी मुन्नी
अपने भुखमरे घर में आई है
उसे किसी भूखे की नजर न लग जाए
काजल लगाओ ।
पगली ? इन तीन नन्हे-मुन्नों के होते
अपने को क्या गम है ?
अपने ये तीन नन्हे-मुन्ने
क्या किसी तीन बैंड वाले ट्रांजिस्टर से कम हैं ?
